Bundelkhand Journal of Academic Research

भारत में सहकारी विकास हेतु सरकारी प्रयासों का अवलोकन

डॉ. गजेंद्र नाथ[1], डॉ. अजय सिंह[2]

1. **असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र),** राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन राजकीय महाविद्यालय तालबेहट, ललितपुर, उत्तर प्रदेश।
2. **असिस्टेंट प्रोफेसर (अंग्रेजी),** गोस्वामी तुलसीदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कर्वी, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश।

(**Corresponding Author:** gajendranath11@gmail.com)

https://doi.org/10.5281/zenodo.21624258

सारांश

भारतीय परिप्रेक्ष्य में सहकारिता आन्दोलन जीवन के एक सिद्धांत और व्यवसाय की एक प्रणाली दोनों रूपों में विकसित हुआ है। यहाँ इसकी भूमिका सामाजिक–आर्थिक विकास में एक स्वैच्छिक साहचर्य के उस मंच के रूप में ज्यादा रही है जहाँ लोग साम्यता और सबकी भलाई के सिद्धांतों के आधार पर धन के उत्पादन तथा वितरण में पारस्परिक सहयोग के लिए एकत्र होते हैं। इस दृष्टि से भारत में सामाजिक–आर्थिक विकास की धारा में पीछे रह गए, हाशिये के गरीब और वंचित वर्ग के सामान्य जन के उन्नयन में सहकारिता आन्दोलन की एक निश्चित सामाजिक भूमिका रही है, एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य रहा है। इस रूप में भारत में सहकारिता आंदोलन का इतिहास एक सामाजिक–आर्थिक आन्दोलन का इतिहास ज्यादा प्रतीत होता है। एक गठन के रूप में सहकारिता भारत सहित विकासशील देशों में व्यापक रूप से प्रचलित है। ग्रामीण विकास के एक साधन के रूप में इसमें काफी संभावनाएं हैं। एक नैतिक मानदंड के रूप में सहयोग की प्राचीन काल से ही दुनिया भर में प्रशंसा की जाती रही है। सामाजिक व्यवहार के एक तरीके के रूप में यह एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाने वाली अनगिनत गतिविधियों में प्रकट होता है। इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में सहकारी विकास हेतु किए गए सरकारी प्रयासों का अवलोकन किया गया है।

आलेख सूचना

प्राप्त: 17 जनवरी, 2026 **स्वीकृत:** 20 फरवरी, 2026 **प्रकाशित:** 31 मार्च, 2026

सारणी: 00 **चित्र एवं ग्राफ:** 00 **स्रोत एवं संदर्भ:** 14

मुख्य शब्द: आर्थिक मॉडल, सहकारी आंदोलन, साम्यता, सामूहिक विकास, स्व–सहायता।

1. परिचय एवं पृष्ठभूमि: सहकारिता के विचारों और उसकी आधुनिक अवधारणा का जन्म जहाँ ब्रिटेन, अमेरिका और जर्मनी में माना जाता है, वहीं औद्योगिक क्रान्ति के दौरान तथा उसके बाद के समय में सहकारिता को एक सांगठनिक स्वरूप मिला। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो यहाँ सहकारिता आन्दोलन जीवन के एक सिद्धांत और व्यवसाय की एक प्रणाली दोनों रूपों में विकसित हुआ है। भारत में कोऑपरेटिव का इतिहास सवा सौ साल से भी अधिक पुराना है। देश में औपचारिक सहकारी ढाँचे का कानून बनने से पहले ही भारत के कई हिस्सों में सहयोग और सहकारी गतिविधियों का चलन था। गाँव के समुदायों द्वारा मिलकर गाँव के तालाब या देवरई या वनराई जैसे गाँव के जंगल जैसी स्थायी संपत्ति बनाने का चलन बहुत सामान्य था। इसी तरह, समुदायों द्वारा संसाधनों को इकट्ठा करने के उदाहरण भी मिलते थे, जैसे अगली फसल से पहले समूह के ज़रूरतमंद सदस्यों को देने के लिए फसल के बाद अनाज इकट्ठा करना, या समूह के सदस्यों को उधार देने के लिए नियमित अंतराल पर नकद में छोटा योगदान इकट्ठा करना, जैसे कि मद्रास प्रेसीडेंसी में चिट फंड, त्रावणकोर में "कुरिज़", कोल्हापुर में "भिशीज़" आदि। कोल्हापुर के "फड़" जहाँ किसान बाँध बनाकर पानी रोकते थे और पानी के बराबर बँटवारे के साथ–साथ सदस्यों की उपज की कटाई और उसे बाज़ार तक पहुँचाने का भी इंतज़ाम करते थे, और "लाना" जो किसानों की सालाना पार्टनरशिप थी जिसमें वे मिलकर खेती करते थे, और कटाई की गई उपज को अपने पार्टनर द्वारा लगाए गए श्रम और बैल की शक्ति के अनुपात में बाँटते थे, ये सभी सहयोग के सहकारी उदाहरण कहे जा सकते हैं।

आधुनिक भारत में सहकारिता आंदोलन के सफर में अनेक उतार–चढ़ाव रहे। ब्रिटिश सरकार के प्रयासों से शुरू हुए सहकारिता के छोटे–छोटे कदमों ने धीरे–धीरे एक सामाजिक–आर्थिक आन्दोलन का रूप ले लिया जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में अपना योगदान देने के साथ ही भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास में भी अपनी

महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भारत में सहकारिता आंदोलन की अपनी कुछ कमजोरियाँ और कुछ खूबियाँ रही हैं। इन कमजोरियों और खूबियों के बीच सहकारिता आंदोलन ने भारत के आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एक नये परिवेश का निर्माण किया। कृषि क्षेत्र से शुरू हुए इस सहकारिता आंदोलन के दायरे का समय बीतने के साथ विस्तार हुआ और इसमें धीरे–धीरे छोटे–छोटे किसान, मजदूर, उद्यमी, कारीगर और कामगार शामिल होते गए।

1.2. अध्ययन के उद्देश्यः प्रस्तुत शोध पत्र के तहत भारत में सहकारिता के विकास हेतु किए गए सरकारी प्रयासों का अवलोकन किया गया है, जिसके दो उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:

1. आजादी के पूर्व भारत में सहकारिता के प्रयासों को समझना।
2. आजादी के बाद भारत में सहकारिता के प्रयासों को समझना।

2. आजादी के पूर्व सहकारिता के प्रयासः उन्नीसवीं सदी के आखिर में खेती की खराब हालत और किसानों को फाइनेंस देने के लिए संस्थागत इंतज़ाम न होने की वजह से कृषि और किसानों में असंतोष बढ़ता गया। वर्ष 1880 के अकाल आयोग और 20 साल बाद 1901 के अकाल आयोग दोनों ने भारतीय किसानों के गहरे कर्ज को उजागर किया, जिसके कारण कई मामलों में उनकी ज़मीन पैसे उधार देने वाले लोगों के कब्ज़े में चली गई। असंतोष के माहौल के कारण सरकार ने कई कदम उठाए, लेकिन कानूनी उपायों से स्थिति में खास सुधार नहीं हुआ।

कृषि बैंकों का प्रस्ताव सबसे पहले वर्ष 1858 में और फिर वर्ष 1881 में अहमदनगर के डिस्ट्रिक्ट जज श्री विलियम वेडरबर्न ने जस्टिस एम.जी. रानाडे से सलाह करके रखा था, लेकिन इसे स्वीकार नहीं किया गया। मार्च 1892 में मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नर ने श्री फ्रेडरिक निकोलसन को प्रेसीडेंसी में कृषि या अन्य लैंड बैंकों की प्रणाली शुरू करने की संभावना की जांच करने के लिए नियुक्त किया और उन्होंने 1895 और 1897 में दो वॉल्यूम में अपनी रिपोर्ट सौंपी थी। वर्ष 1901 में अकाल आयोग ने आपसी क्रेडिट एसोसिएशन बनाकर ग्रामीण कृषि बैंक स्थापित करने की सिफारिश की थी, परिणामस्वरूप ऐसे कदम उत्तर पश्चिमी प्रांतों और अवध की सरकार ने उठाए। आयोग ने कृषि बैंकों के पीछे के सिद्धांतों का भी सुझाव दिया ताकि एक मज़बूत एसोसिएशन निर्मित हो, जो व्यक्तियों के बजाय समूहों को गारंटी और ऋण देने के फायदे दे सके।

2.1 सहकारी साख समितियां अधिनियम,1904: उपर्युक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ को एक कानूनी आधार देने के लिए, सरकार ने मिस्टर निकोलसन को मेंबर बनाकर एडवर्ड लॉ कमेटी को जांच करने और कार्रवाई के तरीके सुझाने के लिए गठित किया, जिसकी सिफारिशों पर कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ विधेयक 25 मार्च, 1904 को पारित किया गया। यह भारत में सहकारी आंदोलन को औपचारिक रूप देने वाला पहला कानून था, जिसने ग्रामीण ऋण संबंधी समस्याओं को हल करने का प्रयास किया। वैसे तो इसका उद्देश्य राज्य द्वारा समर्थित ऋण–केंद्रित, पंजीकृत समितियों के गठन को सक्षम बनाकर किसानों को साहूकारों के अत्यधिक कर्ज से मुक्ति दिलाना था। लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य कृषि और ग्रामीण ऋण समितियों की स्थापना करना और गैर–ऋण समितियों को प्रतिबंधित करना था। इसमें समितियों के पंजीकरण, सदस्यता पात्रता और समितियों के प्रबंधन और निरीक्षण के लिए एक रजिस्ट्रार की नियुक्ति का प्रावधान है। इसके तहत सोसाइटियों की देनदारी सीमित या असीमित हो सकती है। लाभांश भुगतान पर प्रतिबंध था; जबकि शुद्ध लाभ का कम से कम एक–चौथाई हिस्सा आरक्षित निधि में जमा करना अनिवार्य था। समितियों को आयकर, स्टाम्प शुल्क और पंजीकरण शुल्क से छूट दी गई थी।

यह कोऑपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज़ एक्ट सिर्फ़ क्रेडिट कोऑपरेटिव्स तक ही सीमित था। वर्ष 1911 तक 3 लाख से अधिक सदस्यों वाली 5300 औपचारिक और अनौपचारिक सोसाइटीज़ मौजूद थीं। वर्ष 1904 के एक्ट के तहत पहले 5–6 सालों में भारत में रजिस्टर्ड पहली कुछ कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ में राजाहुली विलेज बैंक, जोरहाट, जोरहाट कोऑपरेटिव टाउन बैंक और चरिगांव विलेज बैंक, जोरहाट, असम (1904), तिरूर प्राइमरी एग्रीकल्चरल कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, तमिलनाडु (1904), एग्रीकल्चर सर्विस कोऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, देवगांव, पिपरिया, मध्य प्रदेश (1905), बैंस कोऑपरेटिव थ्रिफ्ट एंड क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड, पंजाब (1905), बिलिपाड़ा सर्विस कोऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड, ओडिशा (1905), भारत सरकार, सेक्रेटेरिएट कोऑपरेटिव थ्रिफ्ट एंड क्रेडिट सोसाइटी (1905), कांगिन्हल व्यवसाय सेवा सहकारी बैंक लिमिटेड, कर्नाटक (1905), कासबे ताडवाले कोऑपरेटिव मल्टी–पर्पस सोसाइटी, महाराष्ट्र (1905), प्रीमियर अर्बन क्रेडिट सोसाइटी ऑफ़ कलकत्ता, पश्चिम बंगाल (1905), चित्तूर कोऑपरेटिव टाउन बैंक, आंध्र प्रदेश (1907), रोहिका यूनियन ऑफ़ कोऑपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज़ लिमिटेड, बिहार (1909) आदि शामिल हैं। इस क़ानून के तहत कई नॉन–क्रेडिट पहलें भी सामने आईं जैसे मद्रास में ट्रिप्लिकेन सोसाइटी जिसने एक कंज्यूमर स्टोर चलाया, धारवाड़ और हुबली में बुनकर क्रेडिट कोऑपरेटिव्स, जिन्होंने धागे आदि के रूप में क्रेडिट दिया। हालांकि, इन्हें अर्बन क्रेडिट सोसाइटीज़ के रूप में रजिस्टर्ड किया गया था।

1904 के एक्ट में सहकारी समितियों के गठन, सदस्यता के लिए पात्रता, पंजीकरण, सदस्यों पर देनदारियां, लाभ, शेयर और सदस्यों के हितों का निपटान, सोसाइटी के विशेषाधिकार, सदस्यों के खिलाफ दावे, ऑडिट, निरीक्षण और पूछताछ, विघटन, कराधान से छूट और नियम बनाने की शक्ति का प्रावधान था। हालांकि, सहकारी समितियों के उपयुक्त नियम और मॉडल उपनियम तैयार करना जैसे परिचालन और प्रबंधकीय मुद्दों को स्थानीय सरकारों के लिए छोड़ दिया गया था। रजिस्ट्रार का पद जिसे एक खास आधिकारिक तंत्र के रूप में देखा गया था, जिसमें विशेष प्रशिक्षण और सही सोच वाले अधिकारियों को रखा जाना था ताकि सहकारी विकास को बढ़ावा दिया जा सके, यह 1904 के सहकारी समिति अधिनियम का नतीजा था। हालांकि, बाद में इस अधिनियम को 1912 के व्यापक सहकारी समिति अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया, जिसमें गैर–ऋण समितियों और केंद्रीय संस्थानों को भी शामिल किया गया।

2.2 सहकारी समितियां अधिनियम, 1912: सहकारी समितियों की संख्या में उम्मीद से कहीं ज़्यादा बढ़ोतरी होने के कारण, 1912 का सहकारी समिति अधिनियम एक आवश्यकता बन गया। सहकारी समितियां अधिनियम, 1912, जो 1 मार्च, 1912 को पारित हुआ, एक मूलभूत भारतीय कानून है जिसका उद्देश्य सहकारी समितियों के गठन को सुगम बनाना और उनसे संबंधित कानूनों में संशोधन करना है। इसका उद्देश्य कृषकों, कारीगरों और सीमित साधनों वाले व्यक्तियों के बीच मितव्ययिता, आत्मनिर्भरता और सहकारिता को बढ़ावा देना है। इसने 1904 के अधिनियम का स्थान लिया और गैर–ऋण समितियों के पंजीकरण का विस्तार किया। इस अधिनियम के तहत सहकारी समितियों का निर्माण उनके सदस्यों को गैर–ऋण सेवाएं प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है। इस अधिनियम ने सहकारी संघों को भी निर्मित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस अधिनियम के लागू होने के बाद, क्रेडिट सेक्टर में, शहरी कोऑपरेटिव बैंकों ने खुद को प्राथमिक सहकारी समितियों और व्यक्तियों को अपने सदस्य बनाकर केंद्रीय सहकारी बैंकों में बदल लिया। इसी तरह, नॉन–क्रेडिट गतिविधियों को भी सहकारी तरीके से संगठित किया गया, जैसे कि क्रय–विक्रय यूनियन, विपणन समितियां और गैर–कृषि क्षेत्र में, हथकरघा बुनकरों की सहकारी समितियां और अन्य कारीगर आदि।

2.3 सहकारिता पर मैक्लेगन समिति (1914): बैंकिंग संकट और प्रथम विश्व युद्ध दोनों ने सहकारिता के विकास को प्रभावित किया। हालांकि सहकारी समितियों में सदस्य जमाराशि में तेजी से वृद्धि हुई, युद्ध ने नकदी फसलों के निर्यात और कीमतों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों में बकाया राशि और ऋण दर बहुत बढ़ गई। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने सहकारी आंदोलन की प्रगति की समीक्षा करने और वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए अक्टूबर 1914 में सरकार ने सर एडवर्ड मैकलैगन की अध्यक्षता में सहकारिता पर एक समिति नियुक्त की, ताकि सहकारिता की स्थिति का अध्ययन किया जा सके और उनके भविष्य के लिए सिफारिशें की जा सकें। समिति मुख्यतः क्रेडिट कोऑपरेटिव्स से संबंधित थी।

समिति ने 1915 में कई संरचनात्मक और परिचालन संबंधी प्रस्तावों के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें इसमें हर प्रांत में एक मज़बूत तीन–स्तरीय ढांचा बनाने (ग्राम स्तर पर प्राथमिक समितियों, जिला स्तर पर केंद्रीय सहकारी बैंकों और सर्वोच्च स्तर पर प्रांतीय सहकारी बैंकों) के साथ एक पदानुक्रमित प्रणाली का प्रस्ताव दिया गया। इसने "मात्रा की अपेक्षा गुणवत्ता" पर जोर दिया गया और आंदोलन से आग्रह किया गया कि वह तीव्र, अनियोजित विस्तार के बजाय मौजूदा समितियों को मजबूत करने पर ध्यान केंद्रित करें। इसके द्वारा सहकारी सिद्धांतों पर सदस्यों को शिक्षित करने और कर्मचारियों और रजिस्ट्रारों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के महत्व पर जोर दिया गया। बेहतर लेखापरीक्षा तंत्र, ऋण आवेदनों की सावधानीपूर्वक जांच और "एक सदस्य, एक वोट" सिद्धांत का कड़ाई से पालन करने की सिफारिश की गई। सहकारी समितियों को ऋण से परे विपणन, प्रसंस्करण और उपभोक्ता वस्तुओं जैसी गैर–ऋण गतिविधियों में विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

हालांकि, समिति ने इस आंदोलन में कई "स्पष्ट खामियों" को नोट किया, जिनमें जनमानस में निरक्षरता और अज्ञानता, धन का दुरुपयोग और व्यापक भाई–भतीजावाद, ऋण देने में अत्यधिक देरी, जनता में सहकारी समितियों को जन आंदोलन के बजाय सरकार द्वारा संचालित पहल के रूप में देखना आदि शामिल हैं। 1912 के अधिनियम के बाद, पहली सहकारी आवास समिति, मद्रास सहकारी संघ, 1918 में बंबई केन्द्रीय सहकारी संस्थान और बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पंजाब आदि में सहकारी संस्थान स्थापित हुए। उपभोक्ता सहकारी समितियों और बुनकर सहकारी समितियों को छोड़कर, कई गैर–कृषि क्रेडिट सहकारी समितियों ने प्रायः अच्छा प्रदर्शन किया और इस दौरान उनकी शक्ति और परिचालन में बढ़ोतरी हुई।

2.4 भारत सरकार अधिनियम, 1919: वर्ष 1919 में, सुधार अधिनियम के पारित होने के साथ, एक विषय के रूप में सहकारिता को प्रांतों में स्थानांतरित कर दिया गया था। वर्ष 1925 का बॉम्बे कोऑपरेटिव सोसाइटीज़ एक्ट, जो पास होने वाला पहला प्रांतीय एक्ट था, ने एक व्यक्ति एक वोट का सिद्धांत पेश किया। हालांकि, इस दौरान कृषि ऋण परिदृश्य चिंता का विषय था। विभिन्न प्रांतों में विभिन्न समितियों और सहकारी बैंकों ने समस्याओं का सामना किया। वर्ष 1928 में रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर ने भी सहकारी क्षेत्र की समीक्षा की और भूमि गिरवी बैंकों की स्थापना की

सिफारिश की। कृषि और गैर–कृषि दोनों गैर–क्रेडिट सेक्टर में सहकारी समितियां बनाई गईं, लेकिन निजी विपणन एजेंसियों के विरोध और उनके पदाधिकारियों की अनुभवहीनता के कारण संचालन में अधिकांश कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसने शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए सहकारी संस्थानों और संघों को मजबूत करने पर ध्यान केंद्रित किया। इस समय सहकारिता में एक प्रमुख विकास 1929 में अखिल भारतीय सहकारी संस्थाओं की स्थापना थी।

1934 में भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की स्थापना कृषि ऋण के लिए एक प्रमुख विकास था। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 में स्वयं आरबीआई को कृषि ऋण विभाग स्थापित करने की आवश्यकता थी। चूंकि सहकारी समितियों को ग्रामीण विकास का माध्यम बनना था। परिणामस्वरूप, 1935 में लोकप्रिय निर्वाचित सरकारों की स्थापना के साथ ऐसे कार्यक्रम तैयार किए गए जिनमें ग्रामीण ऋणग्रस्तता को प्राथमिकता दी गई। 1937 में गठित मेहता समिति ने विशेष रूप से सहकारी ऋण समितियों के बहु–उद्देश्य वाली सहकारी समितियों के पुनर्गठन की सिफारिश की थी। द्वितीय विश्व युद्ध ने कृषि जिंसों की कीमतों में वृद्धि की जिससे किसानों को अधिक लाभ हुआ और परिणामस्वरूप सहकारी समितियों को अधिक नुकसान हुआ। घरेलू खपत के साथ–साथ कच्चे माल के लिए आवश्यक वस्तुओं की छोटी अवधि से निपटने के लिए, सरकार ने उत्पादकों और राशनिंग से वस्तुओं की खरीद का सहारा लिया, जिसके लिए उसने सहकारी समितियों का उपयोग करने का फैसला किया। इससे बहु–उद्देश्यीय सहकारी समितियों के विकास को गति मिली है। इसके अलावा वर्ष 1939–1945 के बीच की अवधि ने शहरी सहकारी ऋण संरचना के विकास को प्रोत्साहन दिया। कई सहकारी समितियों ने बैंकिंग कार्यों को शुरू कर दिया था, जिससे सहकारी गतिविधियों के पर्याप्त विविधिकरण के साथ आकार और परिचालन में वृद्धि हुई थी।

2.5 बहु–इकाई सहकारी समिति अधिनियम, 1942: दरअसल भारत सरकार अधिनियम, 1919 और 1935 के तहत, सहकारिता एक प्रांतीय विषय था। लेकिन जब संस्थाएं प्रांतीय सीमाओं के पार काम करने लगीं, तो एक केंद्रीय, सक्षम कानूनी ढांचा प्रदान करने के लिए एक नए अधिनियम की आवश्यकता पड़ी। इसलिए बहु–इकाई सहकारी समितियां अधिनियम, 1942 (अधिनियम संख्या VI, 1942), ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा कई प्रांतों में संचालित सहकारी समितियों से उत्पन्न कानूनी अस्पष्टता को दूर करने के लिए अधिनियमित किया गया था। इस कानून की आवश्यकता सहकारी समितियों के विस्तार के संदर्भ में उत्पन्न हुई, विशेष रूप से केंद्रीय सरकार द्वारा वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए प्रायोजित उन समितियों के विस्तार के संदर्भ में, जो एक से अधिक प्रांतों में संचालित होती थीं। इस तरह इसका उद्देश्य उन सहकारी समितियों की कानूनी, कार्यात्मक और प्रशासनिक चुनौतियों का समाधान करना था जिनके सदस्य और संचालन एक राज्य से अधिक क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इसने उन समितियों के लिए कानूनी निगरानी को सक्षम बनाया जिनका संचालन किसी एक राज्य तक सीमित नहीं था।

इसके तहत ऐसी सहकारी समितियों के निगमन, विनियमन और समापन के लिए प्रावधान करना था जिनका उद्देश्य किसी एक प्रांत तक सीमित न हो। इसने एक प्रांत में पंजीकृत समितियों को अन्य प्रांतों में भी काम करने की अनुमति दी और व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए केंद्रीय रजिस्ट्रार की शक्तियों को राज्य रजिस्ट्रारों को सौंप दिया। यह आधुनिक कानून का अग्रदूत था, जो विशुद्ध रूप से स्थानीय सहकारी प्रयासों के बजाय बहु–इकाई सहकारी प्रयासों को मान्यता देने की दिशा में एक बदलाव का प्रतीक था। इस अधिनियम ने सहकारी आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, और 20वीं शताब्दी बाद में लागू किए गए व्यापक नियमों से पहले अंतर–राज्यीय सहयोग के लिए एक कानूनी ढांचा प्रदान किया।

2.6 सहकारी योजना समिति (1945): वर्ष 1944 में गाडगिल समिति ने ऋण के अनिवार्य समायोजन और कृषि ऋण निगमों की स्थापना की सिफारिश की, जहां भी सहकारी एजेंसियां पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं थीं। श्री आर.जी. सरैया की अध्यक्षता में समिति वर्ष 1945 में गठित हुई थी, जिसने आर्थिक योजना के लोकतंत्रीकरण के लिए सहकारी समितियों को सबसे उपयुक्त माध्यम पाया और आर्थिक विकास के प्रत्येक क्षेत्र की जांच की थी। समिति ने सिफारिश की कि प्राथमिक समितियों को बहुउद्देशीय समितियों में परिवर्तित किया जाए और अगले दस वर्षों के भीतर 30 प्रतिशत ग्रामीण आबादी और 50 प्रतिशत गांवों को पुनर्गठित समितियों के दायरे में लाने का प्रयास किया जाए।

वर्ष 1946 में सरदार वल्लभ भाई पटेल से प्रेरित होकर श्री मोरारजी देसाई एवं श्री त्रिभुवनदास पटेल के नेतृत्व में गुजरात के खेड़ा जिले के दुग्ध उत्पादक 15 दिन की हड़ताल से दुग्ध आपूर्ति न किए जाने के कारण बाम्बे सरकार को अपने उस आदेश को वापस लेने के लिए विवश होना पड़ा जिसमें एक प्राइवेट डेयरी पॉलसन को एकाधिकार अधिप्राप्ति अधिकार दिए गए थे। उस समय एक इतिहास रचा गया जब दो प्राथमिक ग्राम दुग्ध उत्पादक समितियां अक्टूबर, 1946 में पंजीकृत हुईं। इसके तुरंत बाद 14 दिसम्बर, 1946 को खेड़ा जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक मिल्क यूनियन पंजीकृत हुई जिसे अमूल के नाम से जाना गया।

वर्ष 1947 में रजिस्ट्रार कांफ्रेंस ने संस्तुति की गई कि प्रांतीय सहकारी बैंकों का पुनर्गठन किया जाए ताकि केंद्रीय बैंकों के माध्यम से प्राथमिक समितियों को अधिक सहायता दी जा सके। पहली बार विपणन के साथ क्रेडिट को प्रभावी रूप से जोड़े जाने और उदार ऋणों एवं सब्सिडीज के माध्यम से सहायता उपलब्ध कराने के लिए विचार किया

गया ताकि बड़ी संख्या में गोदामों और प्रोसेसिंग प्लांट्स की स्थापना की जा सके। उल्लेखनीय है कि वैकुंठ भाई मेहता ने बाम्बे सरकार में सहकारिता के प्रभारी मंत्री के रूप में कार्यभार संभाला जिसके बाद राज्य में सहकारिता आंदोलन को गति प्राप्त हुई। श्री जनार्दन मदन की अध्यक्षता में सहकारिता शिक्षा और प्रशिक्षण संबंधी समिति ने सहकारिता शिक्षा कार्यक्रमों और शिक्षा फंड की स्थापना हेतु संस्तुति की। कृषि साख संगठन समिति जिसके अध्यक्ष सर मणिलाल नानावती थे, ने कृषि वित्त के क्षेत्र में राज्य सहायता और सभी साख सहाकरी समितियों को बहुउद्देशीय सहकारिता समितियों में बदलने की सिफारिश की। इसने एक त्रिस्तरीय सहकारी साख बैंकिंग प्रणाली और विभिन्न सब्सिडी की संस्तुति भी की थी।

3. आजादी के बाद सहकारिता के प्रयासः वर्ष 1947 में भारत की आजादी के बाद सहकारी विकास को गति प्राप्त हुई जिसमें योजना आयोग द्वारा तैयार की गई विभिन्न योजनाओं में सहकारी समितियों को एक महत्वपूर्ण भूमिका दी गई।

3.1 अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1951): सहकारिता के विकास में एक महत्वपूर्ण पहल सरकार द्वारा गठित ए डी गोरवाला समिति को भी माना जाता है, जिसे प्रायः अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति कहा जाता था। यह समिति वर्ष 1951 में नियुक्त की गई, जिसने 1954 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में पाया कि देश के अधिकांश भागों में सहकारी समितियां नहीं हैं और जिन क्षेत्रों में हैं, वहां भी कृषि आबादी का एक बड़ा भाग इसकी सदस्यता में शामिल नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में जहां सदस्यता है, वहां भी साख जरूरतें (75.2 प्रतिशत) अन्य स्रोतों से पूरी की जाती हैं। समिति ने ग्रामीण साख की एक समेकित प्रणाली शुरू करने, सहकारी समितियों की शेयर पूंजी में सरकार की भागीदारी और उनके बोर्ड में सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति की सिफारिश की ताकि उनके प्रबंधन में हिस्सेदारी हो सके। समिति ने सहकारी समितियों के सदस्यों के प्रशिक्षण के महत्व पर भी जोर दिया। भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना किया जाना एक अन्य संस्तुति थी। सरकार और चुनिंदा प्रतिनिधियों ने गोरवाला समिति की प्रमुख संस्तुतियों को स्वीकार कर नेशनल कोआपरेटिव डेवलपमेंट एंड वेयरहाउसिंग बोर्ड की स्थापना की गई। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन किया गया ताकि यह सहकारी साख संस्थाओं के निर्माण में एक सक्रिय भूमिका निभा सके।

3.2 पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56): इस योजना में देश में सहकारिता आंदोलन के विजन के बारे में विस्तार से बताया गया। आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए अधिमान्य संगठनों के रूप में सहकारिता समितियों और पंचायतों पर बल दिए जाने का औचित्य बताया गया। इस योजना में सामुदायिक विकास के सभी पहलुओं को शामिल करने के लिए संगठन की सहकारी पद्धति को अपनाने पर बल दिया गया। इसमें शहरी सहकारी बैंकों, कामगारों की औद्योगिक सहकारिता समितियों, उपभोक्ता सहकारिता समितियों, आवासन सहकारिता समितियों, सहकारी प्रशिक्षण एवं शिक्षा के माध्यम से जानकारी के प्रसार का प्रावधान किया गया और यह संस्तुति की गई कि प्रत्येक सहकारी विभाग को सहकारी समितियों की स्थापना नीति का पालन करना चाहिए।

वर्ष 1953 में भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक ने सहकारी समितियों के कार्मिकों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण सुविधाओं की स्थापना हेतु केंद्रीय सहकारिता प्रशिक्षण समिति की संयुक्त रूप से स्थापना की थी। परिणामस्वरूप अखिल भारतीय सहकारिता संघ और राज्य सरकारिता संघों को सहकारी संगठनों के सदस्यों और पदाधिकारियों के प्रशिक्षण का कार्य सौंपा गया। वर्ष 1956 में पटना में संपन्न हुई आल इंडिया कोआपरेटिव कांग्रेस में सहकारी समितियों के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स में राज्य की भागीदारी और सरकार के प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकार किया गया। इसमें यह संकल्प लिया गया कि ऐसे नामांकनों की संख्या कुल डायरेक्टर्स की संख्या का एक तिहाई से अधिक या तीन से अधिक नहीं होना चाहिए, उनमें से जो भी कम हो और यह ऐसी सहकारिता समितियों पर भी लागू हो जिनमें शेयर कैपिटल कुल शेयर कैपिटल का 50 प्रतिशत से अधिक होती है। इस सिफारिश को केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

3.3 दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–61): इसमें राष्ट्रीय नीति के एक केंद्रीय लक्ष्य के रूप में 'नियोजित विकास की एक योजना के भाग के रूप में सहकारिता क्षेत्र के निर्माण' पर जोर दिया गया। इसका उद्देश्य आर्थिक कार्यकलाप का आधार बनने के लिए सहकारिता समितियों को अधिकाधिक रूप से सक्षम बनाना था। इस योजना में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की संस्तुतियों के आधार पर सहकारिता विकास के कार्यक्रम बनाए गए। यह परिकल्पना की गई कि एक गांव में प्रत्येक परिवार कम से कम एक सहकारी समिति का सदस्य अवश्य हो। किसानों को बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए क्रेडिट और नान क्रेडिट समितियों को जोड़े जाने का लक्ष्य भी रखा गया। विभिन्न स्तरों पर सहकारी संस्थाओं के साथ राज्य की भागीदारी, जिसका अनिवार्य आधार सहायता था और न कि हस्तक्षेप या नियंत्रण, की सिफारिश की गई। इस पंचवर्षीय योजना में सहकारी समितियों में राज्य की भागीदारी को आसान करने के लिए नेशनल एग्रीकल्चरल क्रेडिट लांग टर्म फंड की भी संस्तुति की गई। इस अवधि के दौरान केंद्र सरकार द्वारा नेशनल कोआपरेटिव डेवलपमेंट फंड की भी स्थापना की गई ताकि देश में नान क्रेडिट कोआपरेटिव संस्थाओं की शेयर

कैपिटल में अंशदान देने के उद्देश्य से ऋण लेने हेतु राज्यों को सक्षम बनाया जा सके। वर्ष 1956 के औद्यागिक नीति संकल्प में उन उद्यमों को राज्य सहायता की जरूरत पर बल दिया गया जो औद्योगिक और कृषि से सहकारिता के आधार पर संचालित थे, जिसका उद्देश्य एक विस्तृत प्रगतिशील सहकारी क्षेत्र का निर्माण करना था।

वर्ष 1956 में श्री एस.टी. राजा की अध्यक्षता में सहकारिता कानून संबंधी समिति ने राज्य सरकारों के विचार हेतु एक माडल विधेयक की सिफारिश की थी। नेशनल डेवलपमेंट काउंसिल संकल्प (1958) ने भी सहकारिता क्षेत्र को प्रभावित किया था, जिसने इस बात पर बल दिया कि एक प्राथमिक इकाई के रूप में ग्राम समुदाय के आधार पर सहकारी समितियों का गठन किया जाना चाहिए और ग्राम सहकारिता समितियों तथा पंचायतों के बीच गहन समन्वयन होना चाहिए। संकल्प में यह भी संस्तुति की गई कि मौजूदा सहकारी विधान की प्रतिबंधात्मक विशेषताओं को हटाया जाना चाहिए। कई राज्य सरकारों ने इस माडल विधेयक की सिफारिशों के फलस्वरूप अपने अधिनियमों में संशोधन किए थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सहकारी विपणन और कृषि उत्पादों की प्रोसेसिंग, सहकारी विकास की समेकित योजना का एक महत्वपूर्ण अंग थे। परिणामस्वरूप सभी राज्यों में करीब 1900 प्राथमिक विपणन समितियां बनीं और राज्य विपणन फेडरेशन की स्थापना हुई। केन्द्रीय स्तर पर नेशनल कोआपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन बनाया गया। बाद में इन्हीं विपणन सहकारी समितियों और कृषि सहकारिता समितियों ने किसानों को क्रेडिट एवं इनपुट देकर उनके बढ़े हुए उत्पादों की प्रोसेसिंग द्वारा हरित क्रांति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

3.4 तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–69): इस योजना में सहकारिता पर जोर देते हुए कहा गया कि 'सहकारिता को आर्थिक कार्यकलाप की सभी शाखाओं विशेषकर कृषि, लघु सिंचाई, लघु उद्योग एवं प्रोसेसिंग, विपणन, वितरण, ग्रामीण विद्युतीकरण, आवासन एवं निर्माण और स्थानीय समुदायों के लिए अनिवार्य सुविधाओं के क्षेत्र में अधिकाधिक रूप से एक प्रमुख आधार बनना चाहिए। यहां तक कि मध्यम उद्यम, बड़े उद्योगों और परिवहन क्षेत्र में अधिकाधिक कार्यकलापों को सहकारिता के आधार पर शुरू किया जा सकता है।

छठवें दशक के मध्य से एग्रो–प्रोसेसिंग सहकारिता विशेषकर शुगर और स्पिनिंग क्षेत्र में संख्या और अंशदान की दृष्टि से महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई। यह मुख्यतः सरकार द्वारा सहकारी क्षेत्र में बड़े पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहित करने की नीति और वित्तीय संस्थाओं से आवधिक ऋण सहायता के कारण हुआ। एनडीडीबी की स्थापना के साथ ही दुग्ध के क्षेत्र में सहकारिता समितियों के आनंद पैटर्न को दोहराने के लिए भारतीय दुग्ध सहकारी आंदोलन को गति प्राप्त हुई। वर्ष 1962 में भारत–चीन युद्ध के बाद उपभोक्ता सहकारी संरचना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को मजबूती मिली। सरकार ने एक नीति के रूप में उचित दर की दुकानों के आवंटन में उपभोक्ता अथवा अन्य सहकारी समितियों को वरीयता देने का निर्णय लिया और कुछ राज्यों ने केवल सहकारी समितियों को नई उचित दर दुकानों का आवंटन किया।

शहरी सहकारी साख समितियों में सार्वजनिक जमा बढ़ने से यह आवश्यकता महसूस की गई कि इन्हें भारतीय रिजर्व बैंक की डिपोजिट इंश्योरेंस स्कीम के तहत बीमा किया जाए। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के चुनिंदा प्रावधानों और बाद में बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 को सहकारी बैंकों पर 1 मार्च 1966 से लागू किया गया ताकि उनके बैकिंग कार्य को विनियमित किया जा सके और डिपोजिटस का बीमा कवरेज हो सके। भारत सरकार ने केंद्रीय भूमि बंधक बैंकों के माध्यम से सहकारी समितियों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वर्ष 1962 में एग्रीकल्चरल रिफाइनेंस कार्पोरेशन को स्थापित किया।

वर्ष 1963 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) की स्थापना एक सांविधिक निगम के रूप में की गई। यह भारत सरकार के सहकारिता मंत्रालय के तहत 1963 में स्थापित एक वैधानिक निगम है, जो सहकारी समितियों के माध्यम से कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के विकास के लिए वित्तीय सहायता और योजनाएं प्रदान करता है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विपणन, भंडारण, प्रसंस्करण और उत्पादन को बढ़ावा देकर सहकारी आंदोलन को मजबूत करना है। एनसीडीसी की स्थापना से सहकारी विपणन और प्रसंस्करण समितियों की प्रगति में बहुत अधिक तेजी आई।

अक्टूबर, 1964 में आनंद के दौरे के समय दुग्ध सहकारी समितियों द्वारा लाए गए सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन से प्रभावित होकर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन राष्ट्रीय दुग्ध विकास बोर्ड की स्थापना की बात कही ताकि देश भर में दुग्ध के क्षेत्र में सहकारी समितियां के आनंद पैटर्न को दोहराया जा सके। इस दौरान कई संगठनात्मक घटनाक्रम हुए, जैसे कि विभिन्न राष्ट्रीय सहकारिता फेडरेशन की स्थापना किया जाना और नेशनल कोआपरेटिव यूनियन आफ इंडिया का पुनर्गठन आदि। वर्ष 1967 में पुणे में वैकुंठ मेहता नेशनल इंस्टीच्यूट आफ कोआपरेटिव मैनेजमेंट की स्थापना की गई। इस दौरान उपभोकता सहकारी समितियों की प्रगति एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम था। इस अवधि में भूमि विकास बैंकों की प्रगति के साथ डेयरी, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन के लिए ग्रामीण इलेक्ट्रिक सहकारी समितियां और श्रम सहकारी समितियों की स्थापना भी हुई।

3.5 चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–1974): इस योजना में सहकारी लघु अवधि और मध्यम अवधि संरचना को व्यवहार्य बनाने के लिए सहकारी समितियों के पुनर्गठन को उच्च प्राथमिकता दी गई। इसमें सहकारी समितियों को प्रबंधन सब्सिडी और शेयर कैपिटल अंशदान देने के लिए और साथ ही साथ केंद्रीय सहकारी बैंकों के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक प्रावधान किए गए। इसमें छोटे उत्पादकों के पक्ष में नीति बनाने की जरूरत भी रेखांकित की गई। वर्ष 1965 में मिर्धा समिति ने सहकारी समितियों की यथार्थता निर्धारित करने के लिए मानक तय किए और नकली सहकारी समितियों को समाप्त करने; स्वार्थी हितों को समाप्त करने के लिए मौजूदा सहकारी नियमों की समीक्षा करने के लिए उपाय सुझाए, जिसकी संस्तुतियों के फलस्वरूप अधिकांश राज्यों में सहकारिता विधान में संशोधन हुए जिसके कारण सहकारी समितियों की स्वायत्तता और प्रजातांत्रिक विशेषताएं प्रभावित हुई।

3.6 पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974–1979): इस योजना में बड़े स्तर पर सहकारी समितियों के अतिदेय और बकाये की ओर ध्यानाकर्षित करते हुए सहकारी विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को ठीक करने और सहकारी समितियों को वंचित लोगों की ओर उन्मुख करने पर विशेष ध्यान देने पर बल दिया गया। वर्ष 1972 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त किए गए एक विशेषज्ञ समूह की संस्तुतियों के आधार पर सहकारी ढांचे में संरचनात्मक सुधार की परिकल्पना की गई। इस योजना में किसान सेवाएं सहकारी समितियों के गठन की संस्तुति की गई, जैसा कि कृषि संबंधी राष्ट्रीय आयोग द्वारा परिकल्पना की गई थी और सहकारी समितियों के व्यावसायिक आधार पर प्रबंधन की जरूरत पर बल दिया गया।

3.7 छठी पंचवर्षीय योजना (1979–1985): इस योजना में ग्रामीण निर्धनों की आर्थिक दशा सुधारने की दिशा में सुव्यवस्थित रूप से निदेशित सहकारी प्रयासों की महत्ता पर बल दिया गया। इस योजना में प्राथमिक कृषि साख समितियों को सशक्त और व्यवहार्य बहु–उद्देश्यीय इकाइयों में बदलने के लिए उन्हें पुनर्गठित करने की संस्तुति की गई। इसमें उपभोक्ता और विपणन सहकारी समितियों के बीच संपर्क मजबूत करने का सुझाव भी दिया गया। सहकारी फेडरल संगठनों की भूमिका को मजबूत करना, डेयरी, मस्य पालन और लघु सिंचाई सहकारी समितियों के विकास को मजबूत करना, छोटी और मध्यम सहकारी समितियों में जनशक्ति विकास कुछ नियोजित कार्यक्रम किए गए थे।

3.8 नाबार्ड अधिनियम, 1982: भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 30 मार्च 1979 को बी. शिवरामन अध्यक्षता में कैफीकार्ड (कृषि और ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत ऋण व्यवस्था की समीक्षा) समिति गठित की गई, जिसने कृषि व ग्रामीण ऋण की समीक्षा कर 'नाबार्ड' की स्थापना की सिफारिश की और इसके बाद ही राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम,1981 के तहत 12 जुलाई 1982 को राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना हुई, जो ग्रामीण विकास के लिए सबसे बड़ा ऋणदाता है। यह देश के सहकारी बैंकों को पुनर्वित्त पोषण सहायता उपलब्ध कराता है और कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को क्रेडिट फ्लो बढ़ाने के लिए वाणिज्यिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के संसाधनों का अनुपूरण करता है।

3.9 बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम 1984: वास्तविक बहु–राज्य समितियों के गठन और उनके कार्यकरण को आसान बनाने, प्रशासन एवं प्रबंधन में एकरूपता लाने के लिए एक व्यापक केंद्रीय विधान लाने के उद्देश्य से मल्टी स्टेट कोआपरेटिव सोसाइटी अधिनियम,1984 पारित किया गया। इसके बाद मल्टी यूनिट कोआपरेटिव सोसाइटी ऐक्ट, 1942 रद्द कर दिया गया। यह एक व्यापक कानून है, जिसे एक से अधिक राज्यों में कार्य करने वाली सहकारी समितियों के एकीकरण और सुचारू संचालन के लिए बनाया गया था। यह कानून सहकारी समितियों को केंद्रीय रजिस्ट्रार के माध्यम से पंजीकृत करने और उनके कामकाज को व्यवस्थित करने का अधिकार देता है।

3.10 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990): इस योजना में कहा गया कि सहकारी क्रेडिट के क्षेत्र में हुई चहुंमुखी प्रगति के बावजूद ऋणों की कम वसूली और बड़े स्तर पर अतिदेय और बकाये (ओवर–ड्यूज) चिंता के विषय हैं। इस योजना के दौरान प्राथमिक कृषि साख समितियों की बहुत सी व्यवहार्य इकाइयों के रूप में स्थापना करने; क्रेडिट प्रवाह को बढ़ाने के लिए नीति एवं प्रक्रियाओं में तालमेल बढाने, विशेषकर कमजोर वर्गों को इनपुट और सेवाएं सुनिश्चित करने; पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए विशेष कार्यक्रम; शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता शहरी आंदोलन को मजबूत करने और व्यावसायिक प्रबंधन के संवर्धन की संस्तुति की गई।

स्वायत्त सहकारिता आंदोलन के प्रचारकों की मांग और सहकारिता विधान में संशोधन के साथ ही सरकार ने वर्ष 1985 में सहकारी समितियों को प्रजातांत्रिक बनाने और व्यवसायीकरण के लिए सहकारिता विधान के संबंध में के. एन. अराधनाश्वरन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसने राज्य सहकारिता अधिनियमों में उन कानूनी प्रावधानों को हटाने की संस्तुति की, जो सहकारी समितियों की स्वायत्तता और प्रजातांत्रिक विशेषताओं को समाप्त करती है। कई ऐसे प्रावधानों की संस्तुति भी की जो सहकारी समितियों में व्यावसायिक प्रबंधन लाने के लिए प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं को सक्रिय बना सके। इसी प्रकार, वर्ष 1989 में प्रो. ए. एम. खुसरो की अध्यक्षता में कृषि साख सहकारी समिति ने कृषि एवं ग्रामीण साख समस्याओं की जांच कर एक सुव्यवस्थित सुधार की सिफारिश की। इसने संस्तुति की कि आठवी योजना में कमजोर कृषिगत साख समितियों के पुनरुद्धार के लिए एक योजना होनी चाहिए।

3.11 मॉडल सहकारी कानून, 1990: वर्ष 1990 में योजना आयोग द्वारा चौधरी ब्रह्म प्रकाश की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति नियुक्ति की गई जिसका उद्देश्य सहकारिता आंदोलन की स्थिति की शीघ्रता से समीक्षा करना, भावी दिशा निर्देश सुझाना और माडल कोआपरेटिव एक्ट को अंतिम रूप देना था। इसने अपनी रिपोर्ट मई 1991 में प्रस्तुत की। चूँकि, सहकारिता राज्य का विषय है, जिसके चलते प्रत्येक राज्य के अपने सहकारिता विधान हैं और उनकी सहकारी समितियां हैं जिनकी सदस्यता उस राज्य तक ही सीमित है। परिणामस्वरूप, समिति की रिपोर्ट एक ड्राफ्ट मॉडल कोऑपरेटिव एक्ट के साथ राज्य सरकारों को उनके विचार और राज्य स्तर पर उसे अपनाने के लिए उनके पास भेजी गई।

चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति (1990) द्वारा तैयार मॉडल कोऑपरेटिव एक्ट (मॉडल सहकारी कानून), भारत में सहकारी समितियों को सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त करने और उन्हें वास्तव में स्वायत्त, लोकतांत्रिक और सदस्य–केंद्रित संस्थानों के रूप में कार्य करने की अनुमति देने के लिए एक ऐतिहासिक सिफारिश थी। इसका मुख्य उद्देश्य मौजूदा सहकारी कानूनों के प्रतिबंधात्मक प्रावधानों को हटाकर सहकारिता के विकास की सुविधा प्रदान करना था। इसने समितियों के कामकाज में बाधा डालने वाले सरकारी नियंत्रण और हस्तक्षेप को कम करने पर ध्यान केंद्रित किया। समिति ने एक ऐसे मॉडल कानून की सिफारिश की जो सहकारी समितियों को एक एकीकृत और स्वतंत्र संरचना प्रदान करे। इसका उद्देश्य राज्य सरकारों को मौजूदा सहकारी कानूनों को इस तरह से संशोधित करने के लिए प्रेरित करना था कि सहकारी समितियों को उनके सही सहकारी चरित्र में कार्य करने में मदद मिले, क्योंकि वर्ष 1990 के बाद सरकार द्वारा उदारीकृत आर्थिक नीतियों को अपनाए जाने के फलस्वरूप केंद्र और विभिन्न राज्य सरकारों पर ऐसे बदलाव लाने हेतु दबाव बढ़ गया ताकि सहकारी समितियों को निजी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए एक समान वातावरण उपलब्ध हो सके।

3.12 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997): इस योजना में सहकारिता आंदोलन को अधिक स्वायत्तता देकर आंदोलन को प्रजातांत्रिक बनाकर इसे एक स्व प्रबंधित, स्व–नियमित और आत्मनिर्भर संस्थागत ढांचे के रूप में सहकारिता आंदोलन के विकास पर बल दिया गया। इसमें आर्थिक कार्यकलापों को बढ़ाने के लिए और छोटे किसानों, श्रमिकों, शिल्पकारों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए सहकारी समितियों की क्षमता बढ़ाने की बात भी कही गई और व्यावसायिक प्रबंधन में सहकारी कार्यकर्ताओं के विकास और प्रशिक्षण पर बल दिया गया।

3.13 नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002): इस योजना के एक भाग के रूप में सहकारी समितियों के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया गया। चूंकि, सहकारिता राज्य का विषय है और मॉडल सहकारिता अधिनियम के अनुसार राज्य सहकारिता अधिनियमों को संशोधित किए जाने से आई कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, सहकारिता और सिविल सोसाइटी के एक वर्ग ने आत्मनिर्भर सहकारी समितियों के लिए समानांतर सहकारिता विधान लाने हेतु कार्रवाई शुरू की गई। आत्मनिर्भर सहकारी समितियां प्रायः उन समितियों को कहा जाता है जिन्होंने इक्यूटी अंशदान, ऋण और गारंटी के रूप में सरकार से कोई सहायता प्राप्त नहीं की है। ये अधिनियम मुख्यतया चौधरी ब्रह्म प्रकाश की संस्तुतियों पर आधारित थे। दस राज्यों यथा आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना (1995), मध्य प्रदेश (1999), बिहार (1996), जम्मू और कश्मीर (1999), उडीसा (2001), कर्नाटक (1997), झारखंड (1996), छत्तीसगढ़ (1999) और उत्तरांचल (2003) ने समानांतर सहकारिता अधिनियम बनाए हैं जो समर्थकारी हैं और सहकारी समितियों की स्वायत्तता व प्रजातांत्रिक कार्यकरण को सुनिश्चित करते हैं।

3.14 बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002: एमएससीएस अधिनियम, 2002 एक केंद्रीय कानून है जो उन सहकारी समितियों को नियंत्रित करता है जिनके सदस्य या गतिविधियाँ एक से अधिक राज्यों में फैली हुई हैं। यह 19 अगस्त 2002 को लागू हुआ, जो 1984 के अधिनियम का स्थान लेता है। इसका उद्देश्य लोकतान्त्रिक कार्यप्रणाली, सुशासन, पारदर्शिता और एक से अधिक राज्यों में सहकारी समितियों के कामकाज को सरल बनाना है। यह संपूर्ण भारत में लागू होता है। ऐसी समितियाँ जिनके कार्य या सदस्य एक से अधिक राज्यों में हैं, वे इसके अंतर्गत आती हैं। इसका उद्देश्य सहकारी समितियों को सदस्यों के बीच स्व–सहायता और आपसी सहायता के आधार पर सुचारू रूप से संचालित करना है। यह ऋण, आवास, कृषि, उपभोक्ता, विपणन, और दुग्ध जैसे विभिन्न क्षेत्रों की सहकारी सोसायटियों को कवर करता है। यह अधिनियम सहकारी समितियों को एक समान कानूनी ढांचा प्रदान करता है, जिससे वे बिना किसी राज्य–विशिष्ट कानूनी विवाद के कुशलतापूर्वक काम कर सकें।

3.15 राष्ट्रीय सहकारिता नीति, 2002: वर्ष 2002 में भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय सहकारिता नीति की घोषणा की, जिसका उद्देश्य देश में सहकारी समितियों के चहुंमुखी विकास को सुगम करना था। 3 जुलाई 2002 को इस क़ानून में सहकारी समितियों को आवश्यक सहायता, प्रोत्साहन और सहायता उपलब्ध कराने का वायदा किया गया ताकि स्वायत्त, आत्मनिर्भर और प्रजातांत्रिक ढंग से प्रबंधित संस्थाओं के रूप में उनके कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सके, जो अपने सदस्यों के प्रति उत्तरदायी हों तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकें।

राज्यों के सहकारिता मंत्रियों के एक सम्मेलन में की गई संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने वर्ष 2002 में राष्ट्रीय सहकारिता नीति के कार्यान्वयन के लिए एक कार्य योजना तैयार करने हेतु मंत्रालयी टास्क फोर्स का गठन किया, जिसने सुझाव दिया कि समानांतर कानूनों के स्थान पर एक एकल कानून राज्यों में लागू किया जाना चाहिए। यह संस्तुति भी की, कि सहकारी समितियों के अराजनीतिकरण के लिए संसद सदस्यों अथवा विधान सभाओं के सदस्यों को किसी भी सहकारी समिति में किसी पद को धारण करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

3.16 कंपनी सुधार अधिनियम, 2002: डॉ. वाई. के. अलघ की अध्यक्षता में एक समिति ने कंपनी अधिनियम 1956 में संशोधन किए जाने की संस्तुति की। इस समिति की संस्तुतियों के आधार पर संसद में प्रोड्यूजर कंपनी बिल लाया गया। यह कंपनी अधिनियम 1956 में पार्ट IXA–प्रड्यूजर कंपनी के रूप में 6 फरवरी, 2003 को कानून बन गया। पारस्परिक सहायता के सहकारी सिद्धांतों के आधार पर इसमें संस्थागत स्वरूप के एक विकल्प का प्रावधान है जो सहकारी उद्यमों को उपलब्ध है।

3.17 दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007): इस योजना में सहकारी समितियों को स्वायत्त, आत्मनिर्भर और लोकतांत्रिक रूप से प्रबंधित संस्थाओं के रूप में पुनर्गठित करने पर बल दिया गया। ग्रामीण सहकारी साख संरचना को पुनर्जीवित करने के लिए वित्तीय पैकेज और कानूनी सुधारों पर जोर दिया गया। समितियों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर पेशेवर प्रबंधन को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया और सहकारी साख संस्थाओं को स्वावलंबी बनाने के लिए 8000 करोड़ रुपये की पुनर्पूंजीकरण आवश्यकता का अनुमान लगाया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पाद के भंडारण के लिए सहकारी समितियों के माध्यम से गोदामों/भंडार गृहों के निर्माण को बढ़ावा दिया गया। चीनी, कपास, और तेल जैसे कृषि–प्रसंस्करण में सहकारी समितियों की भागीदारी बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम, 2002 के तहत राज्य सरकारों को सहयोग करने के लिए प्रेरित किया गया। इस तरह, दसवीं योजना ने सहकारिता को "व्यापारिक उद्यम" के रूप में विकसित करने और ग्रामीण साख को दोगुना करने का लक्ष्य रखा, जिससे वे 8 प्रतिशत की कृषि विकास दर में योगदान दे सकें।

3.18 सहकारी साख संस्थाओं के पुनरुत्थान के लिए टास्क फोर्स, 2004: ग्रामीण सहकारी साख प्रणाली को सुचारु बनाने, ग्रामीण साख को तीन वर्षों में तिगुना करने और छोटे एवं सीमांत कृषकों की कवरेज को संस्थागत ऋण देकर पर्याप्त रूप से बढ़ाने के उद्देश्यों से भारत सरकार ने अगस्त 2004 में प्रो. ए वैद्यनाथन की अध्यक्षता में एक टास्क फोर्स गठित किया, जिसका कार्य ग्रामीण सहकारी साख संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के लिए कार्ययोजना और इस प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए आवश्यक कानूनी उपाय सुझाना था। इसने संस्तुति की कि कोई भी वित्तीय पुर्नसंरचना जो सहकारी सिस्टम की कमजोरियों के मूल कारणों को दूर नहीं करती है, इसका सतत पुनरुत्थान नहीं करेगी और कानूनी उपायों की जरूरत होगी। इस टास्क फोर्स की संस्तुतियां उसके विचारणीय विषयों के अनुरूप मुख्यतया साख समितियों के पुनरुत्थान तक सीमित रहीं हैं। वैद्यनाथन समिति ने एक ऐसे माडल सहकारिता कानून का भी सुझाव दिया जिसे राज्य सरकारों द्वारा अधिनियमित किया जा सकता था। इसकी संस्तुतियों को अभी कार्यान्वित किया जा रहा है। वैद्यनाथन समिति ने दीर्घकालिक सहकारी साख संरचना के संबंध में भी अपनी रिपोर्ट दी है।

3.19 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012): इस योजना में "तीव्र और अधिक समावेशी विकास" के अंतर्गत सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि उत्पादकता और ग्रामीण अवसंरचना को सुदृढ़ करने पर जोर दिया गया ताकि कृषि उत्पादकता बढ़ाने, महिलाओं को सशक्त बनाने, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने और कमजोर वर्गों को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाया जा सके। सहकारी समितियों के माध्यम से किसानों को सस्ता कर्ज, उन्नत बीज, उर्वरक और विपणन की बेहतर सुविधाएं प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किया गया, जिससे 4 प्रतिशत की कृषि विकास दर का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। योजना ने प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों को पुनर्जीवित करने और कमजोर वर्गों तक ऋण की पहुँच बढ़ाकर ग्रामीण गरीबी को कम करने की रणनीति अपनाई। सहकारिता को सामाजिक सशक्तिकरण के उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया, जिसमें महिला सहकारिता समितियों को बढ़ावा देना शामिल था ताकि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँच सके। ग्रामीण अवसंरचना को बेहतर बनाने के लिए सहकारी संरचना का उपयोग किया गया ताकि क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सके। इस तरह, 11वीं योजना का लक्ष्य सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण और कृषि क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाना था ताकि समावेशी और तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त किया जा सके।

3.20 बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017): इसमें सहकारिता के विकास की दिशा में प्राथमिक कृषि साख समितियों (पीएसीएस) और लैम्प्स (विशाल क्षेत्र बहुउद्देशीय समितियां) को पुनर्जीवित कर उन्हें वित्तीय रूप से मजबूत और लाभदायक बनाना था, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को बेहतर ऋण सहायता मिल सके। इस दौरान महिला सहकारी समितियों और सूक्ष्म ऋण समूहों को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया, जिससे ग्रामीण स्तर पर छोटी बचत को प्रोत्साहन मिले और इन्हें क्रेडिट संस्थानों से जोड़ा जा सके। कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत ऋण के मुख्य स्रोत के रूप में सहकारी समितियों को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। ग्रामीण महिलाओं को छोटी बचत के लिए प्रोत्साहित

करने और सहकारी समितियों के माध्यम से उनकी भूमिका बढ़ाने पर ध्यान दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों और सूक्ष्म ऋण समूहों को सहकारिता से जोड़कर उन्हें बढ़ावा दिया गया। योजना का लक्ष्य सहकारी प्रणाली को अधिक समावेशी बनाना था, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति मिल सके। यह योजना 'तेज, अधिक समावेशी और सतत विकास' पर केंद्रित थी, जिसमें ग्रामीण सहकारी संस्थानों का महत्वपूर्ण स्थान था।

3.21 सहकारिता मंत्रालय, 2021: भारत सरकार के सहकारिता मंत्रालय का गठन 6 जुलाई 2021 को 'सहकार से समृद्धि' के विजन के साथ किया गया, जिसका उद्देश्य देश में सहकारी आंदोलन को मजबूत करना और जमीनी स्तर तक पहुंचाना है। यह सहकारी क्षेत्र के लिए नीतिगत, कानूनी और प्रशासनिक ढांचा प्रदान करता है। इसका उद्देश्य सहकारी समितियों के लिए 'ईज़ ऑफ डूइंग बिजनेस' को आसान बनाना, पारदर्शिता लाना और आधुनिकीकरण/कंप्यूटरीकरण करना, 'सहकार से समृद्धि' के तहत हर गांव तक सहकारिता पहुंचाना और सहकारी–आधारित आर्थिक मॉडल विकसित करना है। यह मंत्रालय "सहकार से समृद्धि" के लक्ष्य के साथ देश के विकास में सहकारी समितियों की भागीदारी सुनिश्चित कर उन्हें सशक्त बनाने और सहकारी आंदोलन को नई ऊंचाई देने के लिए काम कर रहा है।

3.22 राष्ट्रीय सहकारिता नीति 2025: भारत में सहकारी आंदोलन को आधुनिक बनाने और 2047 तक 'विकसित भारत' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए "सहकार से समृद्धि" के उद्देश्य से राष्ट्रीय सहकारिता नीति को 24 जुलाई 2025 को जारी किया गया है। यह नीति छह रणनीतिक स्तंभों (कानूनी सुधार, डिजिटलीकरण, पेशेवर प्रबंधन) के तहत 10 वर्षों में 16 लक्ष्यों को प्राप्त करने का खाका पेश करती है, जिसमें हर गांव में एक सहकारी संस्था और नए क्षेत्रों में विस्तार शामिल है। इसका उद्देश्य सहकारी संस्थाओं को आधुनिक, प्रतिस्पर्धी, पारदर्शी और आत्मनिर्भर बनाना है ताकि वे 2047 तक भारत के आर्थिक विकास के 'दूसरे इंजन' बन सकें। इस नीति के छह रणनीतिक मिशन : नींव को मजबूत करना (कानूनी सुधार, बेहतर शासन और वित्त तक पहुंच), जीवंतता को प्रोत्साहन (नए ग्रामीण क्लस्टर और निर्यात को बढ़ावा देना) भविष्य के लिए तैयार करना (तकनीक एकीकरण (डिजिटल साक्षरता, सहकारी स्टैक), समावेशिता (महिला, दलित और आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाना), नए क्षेत्रों में सहकारिता का विस्तार (बायोगैस, स्वच्छ ऊर्जा, भंडारण और स्वास्थ्य देखभाल जैसे नए क्षेत्रों में प्रवेश), युवा पीढ़ी को जोड़ना (सहकारी शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से युवाओं को जोड़ना) हैं। नीति का मसौदा पूर्व मंत्री सुरेश प्रभु की अध्यक्षता वाली 48–सदस्यीय समिति द्वारा तैयार किया गया था। यह नीति "सहकार से समृद्धि" के विजन के साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने पर केंद्रित है। यह नीति ग्रामीण भारत, महिलाओं, छोटे किसानों और कमजोर वर्गों को सहकारी आंदोलन के माध्यम से मुख्यधारा के आर्थिक विकास से जोड़ने के लिए डिज़ाइन की गई है।

4. निष्कर्ष एवं सुझाव: उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में सहकारिता समाज के वंचित वर्गों के आर्थिक और सामाजिक शोषण के जवाब में उभरा है, जिनका मुख्य उद्देश्य शोषण को कम करना और इस प्रकार अपने सदस्यों की स्थिति में सुधार करना था। लाभ को अधिकतम करना कभी भी प्रमुख लक्ष्य नहीं रहा है। नए परिवेश में सहकारी समितियों को बिना किसी सरकारी संरक्षण और समर्थन के अपने दम पर अन्य प्रकार के संगठनो के साथ प्रतिस्पर्धा करनी होगी। संगठन के रूप में सहकारिता दुनिया के विकसित और विकासशील दोनों देशो में व्यापक रूप से प्रचलित है। उन्हें भारत सहित विकासशील देशो में ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। वर्ष 1904 में अपने जन्म के बाद से, भारत में सहकारी समितियों ने एक लंबा और कठिन रास्ता तय किया है। अब, वे अपनी सदस्यता, व्यापार टर्न ओवर, और अपने सदस्यों के सामाजिक–आर्थिक कल्याण में योगदान और इसलिए ग्रामीण विकास के मामले में भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कुल मिलाकर, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में सहकारिता आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका को विस्तृत स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इस क्षेत्र में निहित संभावनाओं का पूरा–पूरा दोहन देश के विकास को नये आयाम दे सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में जब अधिकतर सार्वजनिक उपक्रम अपनी अतिशय प्रतिबद्धता के कारण उतने सफल सिद्ध नहीं हो रहे हैं तथा निजी उपक्रमों में सामाजिक दायित्वों और सामाजिक प्रतिबद्धताओं के प्रति उतनी मानसिक तत्परता का अभाव है, तब देश की जनसंख्या के बड़े भाग के सामाजिक–आर्थिक विकास की दिशा में सहकारिता से बहुत सारी उम्मीदें जगती हैं। भारत जैसे देश में सहकारिता एक ऐसा उपकरण सिद्ध हो सकता है जिसमें एक साथ गरीबी से लड़ने, खाद्य सुरक्षा देने और रोजगार सृजित करने की असीम क्षमता विद्यमान है। जरूरत बस इस बात की है कि सहकारी संस्थाओं के लोकतांत्रिक तथा समावेशी स्वरूप को बचाते हुए उन्हें उद्यम और कारोबार की आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने में उनकी मदद की जाए।

स्रोत एवं संदर्भ:

1. मिश्रा, बिस्वा स्वरूप (2006)। भारत में प्राथमिक सहकारी समितियों का प्रदर्शनः एक अनुभवजन्य विश्लेषण। जेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, भुवनेश्वर (http://mpra.ub.uni-muenchen.d//21890)।

2. तैमनी, के. के (2014)। इंटीग्रेटेड कोऑपरेटिव्स द केस ऑफ शुगर को–ऑपरेटिव्स इन महाराष्ट्र। एशिया की ग्रामीण सहकारी समितियाँ। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड एंड आईबीएच पब्लिशिंग कंपनी।
3. अष्टांकर ओ.एम (2015)। भारतीय कृषि क्षेत्र के लिए सहकारी आंदोलन का महत्व। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च। 2015;1(11): 557–561।
4. तिवारी, एम.एम. (2015)। इंटीग्रेशन ऑफ फिशरीज एंड फिशरीज को–ऑपरेटिव्स इन बिजनेस डेवलपमेंट इन द न्यू मिलेनियम। द कोऑपरेटर, 38(8), फरवरी, 2015।
5. सिंह एस (2016)। वैश्वीकरण शासन के तहत भारत में सहकारी आंदोलन की समस्याएं और संभावनाएं। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 2016;3(4):59, डीआईपीः 18.01.073/20160304,
6. तिवारी, एस.के (2016)। सहकारी समितियों की वित्तीय भेद्यतारू कुछ नीतिगत प्रभावों के लिए अंतर्निहित कारणों का विश्लेषण। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र जर्नल, 51 (4) ।
7. वरदे, पी. संगीता और बीडी भोले (2016)। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में सहकारी कताई मिलों का प्रदर्शन और संभावनाए। भारतीय कृषि अर्थशास्त्र जर्नल, 51 (4)।
8. सिंह, लोटन एवं जे चटराज (2016)। डेयरी सहकारी समितियो की सेवा के माध्यम से पारिवारिक श्रम आय में वृद्धि। इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 51 (4), 2016।
9. सूर्यवशी, एस. डी. एवं एन.एस. गायकवाड़ (2016)। एकीकृत ग्रामीण विकास में वाराना सहकारी चीनी कारखाने का प्रदर्शन और उपलब्धियां एक केस स्टडी, इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 51 (4), 2016।
10. तिवारी एम, अहिरवार जी.एस (2017)। भारत में सहकारिताओं की उत्पत्ति और विकास। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 2017;2(5):878–889।
11. सिंह, कटार और वीरेंद्र पी सिंह (2018)। भारत में डेयरी डेवलपमेंट रेट्रोस्पेक्ट एंड प्रॉस्पेक्ट। रिसर्च पेपर 15, इस्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट, आनंद, 2018।
12. इंदिरा आर, परमशियाविया (2019)। ए स्टडी ऑन कोऑपरेटिव सेक्टर बैंकस इन इंडियाः प्रॉब्लम्स और प्रॉस्पेक्ट्स। जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चेस इन एलाइड एजुकेशन। इग्नाइटेड माइंड्स जर्नल्स। 2019;16(5):203–208।
13. साहू, आलोक के, सनत के. मेहर, तारक सी. पांडा, सुश्रिता साहू, रुकैया बेगम, और एन. सी. बारिक (2020)। "भारत में कृषि विकास में सहकारी समितियों पर आलोचनात्मक समीक्षा"। करेंट जर्नल ऑफ़ एप्लाइड साइंस एंड टेक्नोलॉजी 39 (22):114–21। https://doi.org/10.9734/cjast/2020/v39i2230850.
14. शेखावत, महेन्द्र, स्वेच्छा मित्तल, गुरमीत कौर (2021)। भारत में सहकारी आंदोलन का इतिहास। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड साइंस रिसर्च रिव्यू, वॉल्यूम–8, अंक–3 मई–जून–2021, पृष्ठ 138–148।

आलेख उद्धरित करें :	नाथ, गजेन्द्र एवं सिंह, अजय (2026)। भारत में सहकारी विकास हेतु सरकारी प्रयासों का अवलोकन। बुंदेलखंड जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च (बीजेएआर), वॉल्यूम–2, अंक–1, जनवरी–मार्च, 2026, पृष्ठ 11–21। https://doi.org/10.5281/zenodo.21624258